Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-5(A)| May-2026

Original Article

सामाजिक इतिहास में लोकगीतों का महत्त्व

डॉ. अशोक कुमार यादव
सामाजिक विज्ञान संकाय (इतिहास)
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

Manuscript ID:
JRD -2026-180501
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 5(A)
Pp. 1-3
May- 2026
Submitted: 15 Apr. 2026
Revised: 25 Apr. 2026
Accepted: 10 May. 2026
Published: 31 May 2026

सारांश :–

20वी सदी के पूर्वाह्न तक इतिहास–लेखन का कार्य प्रायः अभिजन वर्ग को केन्द्र में रखकर किया जाता रहा। अर्थात् राजाओं–महाराजाओं, सामंतों, दरबारियों, उच्चाधिकारियों, विद्वानों इत्यादि के कार्य–कलापों एवं गतिविधियों के ही इर्द–गिर्द चक्कर लगाते रहे इतिहासकार। धीरे–धीरे उन्हें भान हुआ कि इतिहास सिर्फ अभिजनों से नहीं, बहुजनों अथवा आमजनों के सहयोग से ही बनता है। अर्थात् इतिहास में बहुजनों की भूमिका दशा–दिशा की तलाश से ही इतिहास का विशद–व्यापक, पूर्ण एवं सच्चा स्वरूप उद्घाटित हो सकता है। फलतः आमजनों के इतिहास–लेखन की पद्धति शुरू हुई जो तीव्रगतिका नदी की भाँग मार्ग तय करने लगी। उस नई पद्धति में भौतिक स्रोतों की उपादेयता निर्विवाद रूप से सिद्ध मानी जाने लगी। मौखिक गीता अधिकाधिक महत्वपूर्ण एवं विश्वस्त बनते गये। मिथिला के इतिहास – लेखन, विशेषकर सामाजिक इतिहास–लेखन के संदर्भ में भी मौखिक स्रोतों की महत्ता निर्विवाद है। सामाजिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण पहलू है स्त्रियों की दशा। मेरा अभीष्ट विद्यापीठ कालीन समाज की स्त्रियों की दशा–दिशा की जानकारी हेतु उस युग के कुछ लोकगीतों का अन्वेषण करना है। देखने में यह स्रोत लघु अवश्य प्रतीत होता है, परन्तु प्रभाव कीक दृष्टि की गुरुतर है। अर्थात् तोल कम पर मोल व्यापक वाली बात की जा सकती है।

भूमिका

लोकगीतों की महत्ता एवं उपयोगता का बखान बड़े–बड़े मनीषियों एवं विद्वानों ने किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेद के शब्दों में मानव जीवन के लिए लोकगीत अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं। ये सिर्फ काव्य–सौंदर्य तक ही सीमित नहीं, वरन् इनका महत्त्वपूर्ण उद्देश्य विशाल सभ्यता का उद्घाटन, ऐसी सभ्यता का जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूबी हुई है या गलत समझ ली गई है। मिथिला विभूति डॉ० अमरनाथ झा ने श्री रामइकबाल सिंह राकेश की पुस्तक "मैथिली लोकगीत" की भूमिका में लिखा है "लोकगीत हृदय के वास्तविक उद्गार हैं, इसलिए हृदयग्राही हैं।" प्राख्यात स्वतंत्रता सेनानी लाला लाजपतराय ने भी इन गीतों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा है– "हमारे देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक एवं सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।"तात्पर्य यह कि लोकगीतों के माध्यम से किसी भी समाज की सांस्कृतिक अवधारणाएँ एवं जनजीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्ष उद्घाटित होते हैं। इनकी उपादेयता का गंभीरता से आकलन करने के उपरान्त ही मिथिला में तैनात ब्रिटिश अधिकारी जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने सदियों से मौखिक परम्परा में संरक्षित इन गीतों को सर्वप्रथम संकलित एवं प्रकाशित करने का श्रेय प्राप्त किया। उसके लिए उन्हें अथक प्रयास करना पड़ा। तत्पश्चात् तो अनेक अनुसंधानी विद्वानों एवं लोकगीत–प्रेमियों ने इस दिश में सराहनीय योगदान दिये।मूल विषय को स्पर्श करने से पूर्व एक नजर विद्यापति एवं उनके युग पर डालना अप्रासंगिक न होगा। महाकवि अपने युग के साहित्य पुरोधा, इतिहासकार युगद्रष्टा, युगस्रष्टा सबकुछ थे। साहित्य की लगभग समस्त विधाएँ उनकी लेखनी से प्रदीप्त हो उठीं। संस्कृत के प्रकांड विद्वान होकर भी उन्होंने ख्यानि बटोरी एक लोक कवि के रूप में जनसामान्य के लिए जनसामान्य की भाषा एवं शैली में पदावली रचकर उसे मिथिलांचल ही नहीं वरन उत्तर भारत के घर–घर में गुंजायमान कर दिया। कुछ लोगों को उनके लोककवि होने पर संदेह है, जो सत्य नहीं। जन्म से लेकर मरण तक के तमाम संस्कारों की पूर्णता कवि कोकिल के गीतों के बिना संभव ही नहीं होती। ओइनवारवंशीय नरेशों के दरबारी कवि के रूप में उन्होंने एक लम्बा सफर तय किया। फलतः तत्कालीन राजनीतिक–सांस्कृतिक दशा का उन्हें बेहतरीन ज्ञान था, जो उनकी रचनाओं से प्रमाणित होता है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, नौतिक एवं धार्मिक जीवन के लिए उनकी रचनाएँ दर्पण का काम करती है। युगस्रष्टा बनकर उन्होंने अतीत और वर्तमान के साथ – साथ भविष्य की भी चिंता की और ऐसे अनेक ग्रंथ रच डाले जिनमें मिथिला की संस्कृति संरक्षित है। जैसे बंगाल की पहचान रवीन्द्रनाथ ठाकुर से है। उसी तरह मिथिला की पहचान विद्यापति से है। विद्यापति के बगैर मिथिला को जान पाना संभव प्रतीत नहीं, मगर दरबारी कवि होने के कारण उनकी कुछ सीमाएँ भी थीं।खासकर राजनीतिक स्थितियों का जायजा उन्होंने दरबारी की हैसियत से ही किया होगा। सारस्वत प्रतिभायुक्त महाकवि का युग बड़ा ही उथल–पुथल वाला सिद्ध हुआ। नान्यदेव स्थापित कर्नाट–वंशीय अंतिम नरेश हरिसिंह देव के समय में होने वाले गयासुद्धीन तुगलक के हमले ने मिथिला के साथ–साथ समस्त उत्तर भारत की स्वायत्तता सामाप्त कर दी। इसी दौर में दिल्ली सल्तनत की कृपा से ओइनवार – वंश (1335 AD) की नींव पड़ी, जिसकी स्वायत्तता प्रतिबंधित थी। धीरे–धीरे दिल्ली–सल्तनत की स्थिति भी डॉवाडोल होती गई। फलतः कई राज्यों ने स्वतंत्र होने की चेष्टाएँ शुरू कर दीं। अनिश्चय भरे इस अराजक माहौल ने राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को प्रदूषित कर दिया। परम्पराएँ एवं मर्यादाएँ टूटने लगी। विद्यापति युगीन मिथिला में यह दशा कुद समय तक बनी रहीं। फिर दिल्ली सुल्तान इब्राहिम शाह की सहायता से मुसलिम आक्रमणकारी मलिक असलान को शिकस्त देकर स्वतंत्रता हासिल की मिथिला ने, लेकिन उठा–पटक का दौर अभी समाप्त नहीं हुआ था। दिल्ली सुल्तान के पुनः होने वाले हमले में महाराज शिवसिंह वीरगति को प्राप्त हुए।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
डॉ. अशोक कुमार यादव सामाजिक विज्ञान संकाय (इतिहास) ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

How to cite this article:
यादव, अशोक. कुमार. (2026). सामाजिक इतिहास में लोकगीतों का महत्त्व. Journal of research & development, 18(5(A)), 1–3. https://doi.org/10.5281/zenodo.20840970

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI: 10.5281/zenodo.20840970
OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-5(A)| May-2026

तात्पर्य कि मिथिला में अमन–चैन की बहाली के मार्ग में निरन्तर बाधाएँ उपस्थित होती रहीं। इस अराजकता एवं उथल–पुथल से समाज को प्रभावित होना ही था। कुलीनता पर आँच आगई। राज्जाश्रय के अभाव में अर्थव्यवस्था चरमराने लगी। धनिकों का वैभव–विलास बढ़ता गया और गरीबों की दरिद्रता। जब चारों ओर अव्यवस्था और दुख–दैन्य का साम्राज्य व्याप्त हो, तब स्त्रियों की दुर्दशा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

जाहि दिन आहे बेटी तोहरो जनम भेल
घरे–घरे ठोकल केवाड़ है।

निश्चय ही माता–बहन–पुत्री के रूप में खुशी, दुखी पारिवारिक दायित्त्वों एवं कठिनाइयों को झेलने वाली कन्याओं के जन्म पर परिवार में उत्सव नहीं मनाया जाता था। इसके उलट समस्त परिवार दुखों के सागर में गोते लगाने लगता था, जबकि पुत्र के जन्म पर आह्लादित होकर अपना सब कुछ लुटाने को प्रस्तुत हो जाता था। जिसका प्रमाण है यह सोहर–

"सेर भरि सोनवा लुटायब
पसेरी भरि रूपइया रे
आहे सउँसे उजोध्या लुटायब
किछु नहि राखब हे।"

बार–बार पुत्रियों को जन्म देने वाली माँओं को तिरस्कृत किया जाना न होता तो यह गीत नहीं बनता– "जानलि जे रामचन्द्र बेटा देता बेटिया जनम लेल रे। ललना रे सेहो सुनि सासु रिसिआइल आउर मारय धावल रे।" आज 21वीं सदी की कनिया की प्रगतिशीलता का चाहे जितना ढ़ोल पीट ले, स्त्री के प्रति पितृसत्तात्मक समाज के नजरिये में कोई खास परिवर्त्तन नहीं आया है, अन्यथा सारे सुखों की जननी "माँ" जननी की कोख में ही समाप्त कर देने का कुचक्र कैसे रचा जाता। समस्त–भारत के साथ–साथ मिथिला में भी आज कन्या–भ्रूण–हत्या जिस तेजी से पैर पसारती जा रही है, वह गहन चिंता का विषय है। जब आधुनिक समाज की ऐसी मानसिकता है तो मध्यकालीन समाज की कन्याओं का जन्म आबाधित माना जाना तनिक भी अचरज में नहीं डालता। मिथिला की नारियों से जुड़ी अनेक कुरीतियों कुप्रथाओं की चिट्ठी खोलते हैं लोकगीत। बाल–विवाह से संबंधित एक गीत कुछ इस प्रकार है–

"बारहे बरस के रे हमरो उमरिया
बबा कयलन विआह हे सखि
मइया कयलन विआह।"

अबोध अपरिपक्व कन्याओं पर दाम्पत्य एवं मातृत्त्व का गुरूतर दायित्व लाद कर उन्हें शारीकि मानसिक विकलांगता की कालकोठरी में ढकेल दिया जात, जहाँ से प्रतिरोध के स्वर बुलन्द करने की कोई गुंजाइस बाकी नहीं रह जाती थी। बस आँसू बहाते हुए जीवन के दिन काटने थे। एक दूसरी कुप्रथा थी बहुविवाह की, जिसकी ज्वाला में स्त्रियों का मान–सम्मान, सुख–चैन सब कुछ भस्म होता रहा। देखा जाए तो यह प्रथा वेदकालीन है। महाकाव्यों से भी इस प्रथा की प्रष्टि होती है। ऐतिहासिक काल में राजाओं के अंतःपुरों में सैकड़ों रानियों का वृत्तांत मिलता है, फिर भी समाज में एकल विवहा का आर्दश था। राम ने सीता की स्वर्ण–प्रतिमा बनवा कर यज्ञ सम्पन्न किया, परन्तु दूसरा विवाह उन्हें स्वीकार्य नहीं था। मगर मध्यकालीन सामंती समाज की अतीव भोगेच्छा ने बहुविवाह का पुरजोर समर्थन किया। राजाओं, सामंतों एवं धनाढ्यों की बीच एक से अधिक विवाह करना सम्मान का सूचक बन गया। अल्तेकर महोदय के मतानुसार मनु की दस (10) राजा हरिश्चन्द्र की सौ (100) और याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं। मिथिला नरेशों के भी बहुविवाह को भरपूर प्रश्रम दिया। ओइनवार–वंशीय राजा शिवसिंह की छः रानियाँ थीं। महाकवि विद्यापति के नाटक 'गोरक्षविजय' में योगी महेन्द्रनाथ की अठारह (18) रानियों का उल्लेख है। स्वयं विद्यापति की भी दो परिणीताएँ होने की जानकारी मिलती है। 'यथा राजा तथा प्रजा' के आर्दश पर चलते हुए आमजनों ने भी इस कुप्रथा को सर आँखों पर बिठाया और बहुविवाह की प्रथा कभी स्त्रियों के हित में नहीं हो सकती। ऊपर से पंजी–प्रबंध ने आग में घी का काम करते हुए स्त्री–जीवन को अमानवीय यातना–शिविर में तब्दील कर दिया। महाराज हरिसिंह के द्वार प्रचारित पंजी–व्यवस्था ने मैथिली समाज की परिशुद्धता की कितनी रक्षाकी यह निश्चय पूर्वक बताना जरा मुश्किल है, मगर इसने मिथिला की नारियों का जीवन नारकीय जरूर बना दिया। कुलीनवाद से उत्पन्न भलमानुष और विकउआ नामक दैत्य ने कई–कई विवाह करना अपना शगल या पेशा बना लिया। परिणय–सूत्र में बँधने के बाबजूद पति के सानिध्य एवं दाम्पत्य सुख को स्त्रियाँ तरसती रह जातीं। बहुल कामिनी एकल कंत वाली प्रथा का सर्वाधिक दुखद पहलू था एक पुरूष की मृत्यु से कई–कई स्त्रियाँ का वैधव्य को प्राप्त करना। अधिकांश को स्वामी के पुनः दर्शन और पतिगृह जाने का सौभाग्य नहीं मिल पाता था। जो ससुराल पहुँच ही जातीं, उन्हें अधिकतर सौतनों की ईर्ष्या–द्वेष प्रताड़ना ही झेलनी पड़तीं। पति के निध नोपरान्त पर कटे पक्षी–सा तड़पने के सिवाय उनके पास कोई दूसरा नहीं था। लोकगीत में उपेक्षित विस्मृत स्त्री की पीड़ा ने बड़ी मुखरता से अधिव्यक्ति पाई है। "सखि हे हमर दुखक नहिं ओर" जैसे गीत क्या ऐसी ही स्थितियों की ओर संकेतित नहीं है। कभी–कभी अपनी कारूणिक स्थिति से उबरने का उन्हें सही उपाय नजर आता था–मृत्यु

'आँगन बहारैत चिड़िया कि तोहि मोर हित बंधुरे
टाहे आनि दे कनैलक फड़ जहर घोरि पीयब रे।'

जैसे गीत चरम निराशा के क्षणों की ओर ही इंगित करते हैं जो बहुविवाह जैसी कुप्रथा से ही उपजते थे। पराकष्ठा तो यह थी कि स्त्रियाँ 'स्त्री' के रूप मे जन्म नहीं देने के लिए ईश्वर से प्रार्थनाएँ करती थीं, तभी तो इस तरह के बोल अस्तित्व में आ सके–

"धिया के जनम जनि दिअ हे विधाता
धिया डुबथि बीच धार"।

मातृत्व पद से वंचिता स्त्रियों को अनेक प्रकार की लांच्छनाएँ एवं आरोप सहने पड़ने थे, जिसका सजीव चित्रण लोकगीतों में मिलता है। यथा –

सासु मोरा मारय ठुनका ननद गरिआबय रे।
आहे पर घर के जे गोतिनिया बाँझिनिया नाम राखय रे।

बेमेल विवाह तो कमोवेश हर युग में होते रहे। सुकन्या का वैदिक ऋषि च्यवन से विवाह इसी ओर संकेतित है, मगर मध्ययुगीन मिथिला में यह एक सामान्य नियम जैसा बन गया था। कन्या अल्पायु और वर प्रौढ़ या वृद्ध भी। "गौरी के बुढ़ वर भेल, मनक बा तमने रहि गेल या फिर दुर–दुर छीया छीया गौरी के लीखल छनि बुढ़वा अइसन पीया"। जैसे गीतों से उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि होती है। कभी–कभी इस कुप्रथा के खिलाफ विद्रोह के स्वर भी सुनाई देते हैं। जैसे– हम नहिं आजु रहब एहि आँगन जौ बुढ़ होयता जमाई। प्रवाह के विरूद्ध जाने के लिए जिस साहस एवं जागरूकता की अवश्यकता होती है। वह कुछ स्त्रियों में अवश्य रहा होगा, तभी इस तरह के गीतों का सृजन हो सका। मिथिला में एक अत्यतं लोकप्रिय गीत है– पिया मोरा बालक हम तरूणी गे। कौन तप चुकलहुँ भेलक जननी गे। जो बेमेल विवाह में पति के अल्पायु होने की ओर संकेतित है। हिमालय के तराई क्षेत्रों और पर्वतीय अंचलों की कुछ जातियों में इस तरह का विवाह आज भी प्रचलित है। मिथिला में भी यह प्रथा संभवतः समाज के निचले तबके में ही कुछ–कुछ प्रचलित रही थी। उच्च वर्ग में इसका प्रचलन नहीं के बराबर ही था। भारतीय संस्कृति में कर्मवाद के सिद्धान्त को बहुत महत्व दिया गया है। इसके अनुसार इस जन्म के कर्म ही परिपाक होकर अगले जन्म में प्रारब्ध का रूप लेते हैं। तुलसीदास ने भी लिखा है–

"कर्मप्रधान विश्व करि राखा
जो जस करइ सो तस फल चाखा।"

लेकगीतों में भी मायावाद की अनुगूँज सुनाई देती है। शुभ–शुभ कय अब गौरी विआहूँ, इहे वर लीखल ललाट। मिथिला के स्त्री–समाज का जो सबसे विलक्षण पहलू है वह यह कि तमाम कुप्रथाओं से उपजी अपनी दुर्दशा के लिए उनके हृदय से अपने स्वामी के लिए कभी बदुआएँ नहीं निकलीं, बल्कि उनके सुख–चैन के लिए दुआएँ ही करती रहीं, यथा–

'जुग–जुग जिबथु लाख कोस
हमर अभाग हुनक नहिं दोस।'

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-5(A)| May-2026

अपनी अमानवीय दशा को, अपनी नियति मानकर स्वयं को तसल्ली देती रहीं। जो उनकी आशिक्षा अजागरूकता असहायता का ही प्रतिफल था। मिथिला की प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा में गोदना का विशिष्ट महत्व है; क्योंकि गायन के साथ चित्रकारी करने की प्रथा मिथिला की खास पहचान है। मिथिला में नट की तरह दुसाध, मुसहर आदि अनेक दलित जातियों ने इस कला को सुरक्षित रखा है। इसके अलावा अन्य जातियों ने इसे शिक्षा के रूप में ग्रहण किया है। गोदना लोकचित्र अब कागज और कपड़े पर उतरने लगे हैं। मिथिला में अधिकतर दलित वर्गों की महिलाओं ने इसे आजीविका का साधन भी बनाया है। इस क्षेत्र में मधुबनी की श्रीमती चानो देवी, श्रीमती ललिता देवी, श्रीमती महामना देवी, श्रीमती उर्मिला देवी, श्रीमती शांति देवी तथा श्रीमती कुसुमा देवी आदि को गोदना लोक–चित्रकला के लिए राष्ट्रीय अथवा राजकीय सम्मान प्राप्त हो चुका है। स्त्री ही नहीं: बल्कि यह सम्मान शिवन पासवान, गणेश पासवान, अशोक पासवान आदि पुरूषों को भी मिल चुका है। दलित वर्गों के बीच प्रसिद्ध इस कला को कभी मिथिला में हरिजन चित्रकला भी कहा गया था। वैसे तो भारत में अन्य स्थानों पर आदिवासी क्षेत्र में इसे आदिवासी लोक कला के रूप में जाना जाता है, क्योंकि उनके बीच यह कला अधिक लोकप्रिय मानी जाती है और उनकी लोक–संस्कृति का अंग भी है। ये सिर्फ काव्य–सौंदर्य तक ही सीमित नहीं, वरन् इनका महत्त्वपूर्ण उद्देश्य विशाल सभ्यता का उद्घाटन, ऐसी सभ्यता का जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूबी हुई है या गलत समझ ली गई है। मिथिला विभूति डॉ० अमरनाथ झा ने श्री रामइकबाल सिंह राकेश की पुस्तक "मैथिली लोकगीत" की भूमिका में लिखा है। उसके लिए उन्हें अथक प्रयास करना पड़ा। तत्पश्चात् तो अनेक अनुसंधानी विद्धानों एवं लोकगीत–प्रेमियों ने इस दिश में सराहनीय योगदान दिये।मूल विषय को स्पर्श करने से पूर्व एक नजर विद्यापति एवं उनके युग पर डालना अप्रासंगिक न होगा।

निष्कर्ष :–

हिल्या, सीता, गार्गी, मैत्रेयी, भारती जैसी विशिष्ट एवं वैदुष्यपूर्ण स्त्रियों का युग अतीत के घने कोहरे में जा छुपा था। रानी लखिमा, विश्वास देवी धीरमनि, चन्द्रकला इत्यादि जैसी कुछ स्त्रियाँ थीं जो गहन अंधकार में जुगनुओं की भाँति दृष्टिगोचर होती हैं, मगर राजपरिवार की इन विदुषी स्त्रियों ने स्त्री–समाज पर शायद ही कोई प्रभाव पड़ा। समस्त कारण में व्याप्त सामन्तवादी समाज में स्त्रियों की दशा बद से बदतर होती चली गई। उन्हें न सिर्फ आर्थिक राजनीतिक क्षेत्रों में पुरूषों से हीन माना जाने लगा, वरन सामाजिक स्तर पर उनके साथ शूद्रों जैसा व्यवहार किया जाने लगा। मिथिलांचल इसका अपवाद नहीं था। सामन्ती समाज के उपभोक्तावादी दृष्टिकोण ने स्त्रियों को भोग्य से इतर कुछ माना ही नहीं। पति चाहे जैसा भी हो, उसकी अनुगामिनी बनकर जीना ही उसके जीवन का आदर्श था। तरह–तरह की कुप्रथाओं के जाल में फसकर वे मछलियों की भाँति छटपटा रहीं थीं। उनका जन्म ही दुःख का विषय था जो इस लोकगीत में दर्दनाक रूप से मुखरित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. असित कुमार हलदार– भारतीय चित्रकला, पृ० 58
2. किशोरी लाल बैद्य आओर ओमचन्द्र हांण्डा, पहाड़ी चित्रकला, पृ०– 42
3. रामचन्द्र शुल्क–कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ, पृ०– 74–75
4. किशोरी लाल बैद्य आओर ओमचन्द्र हांण्डा, पहाड़ी चित्रकला, पृ०– 49
5. जनार्दन मिश्र, भारतीय प्रतीक विद्या, पृ०– 319
6. डॉ० दुर्गानाथ झा मिथिला साहित्य इतिहास, 1998 पृ०–7
7. डॉ० लोकनाथ मिश्र मिथिला में व्यवहारक गीत, पृ०– 2
8. डॉ० सुनीति कुमार चटजी मैथिली भाषा और संस्कृति, 1986 पृ०– 2
9. डॉ० बालगोबिन्द झा मैथिली साहित्य इतिहास, 1998 पृ०– 42
10. डॉ० बलदेव मिश्र मिथिला में साहित्य इतिहास, 1984 पृ०– 36